International Journal of Education, Modern Management, Applied Science & Social Science (IJEMMASSS)
ISSN : 2581-9925, Impact Factor: 7.150, Volume 06, No. 03(I), July - September, 2024, pp. 68-73

भारत में जाति का राजनीति पर प्रभाव

डॉ. सरोज सीरवी*

प्रस्तावना

विश्व में जाति प्रथा किसी ना किसी रूप में विद्यमान है। भारतीय राजनीति के निर्धारक तत्वों में जाति की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। एक सामान्य भारतीय अपना सब कुछ त्याग सकता है परन्तु अपनी जाति व्यवस्था एवं विरश्वास को नहीं त्याग सकता है। जाति व्यवस्था सभी धर्मों में हिन्दू समाज हो या मुस्लिम या ईसाई समाज में जाति व्यवस्था विद्यमान है। जाति प्रथा भारतीय हिन्दू समाज की प्रमुख विशेषताएं है। जाति प्रथा भारत में परम्परागत रूप में वैदिक काल से उत्पन्न माना जाता है। वैदिक काल में वर्ण व्यवस्था के आधार पर जातियों का वर्गीकृत किया गया था, जिसमें ब्राह्मण–धार्मिक और वैदिक कार्यों का सम्पाद करते थे। क्षत्रियों का कार्य देश की रक्षा करना और शासन प्रबन्ध करना था। वैश्य– कृषि और वाणिज्य संभालते थे तथा शुद्रों को अन्य तीन वर्णों की सेवा करनी पड़ती थी। प्रारम्भ में जाति प्रथा में बन्धन कठोर नहीं थे। यह जन्म पर नहीं वरन् कर्म पर आधारित थी।

मजूमदार एवं मदान के अनुसार– ''जाति एक बन्द वर्ग है।''[1]

कूर्ले C.H.Cooley के शब्दों में, ''जब एक वर्ग पूर्णतः आनुवंशिकता पर आधारित होता है तो हम उसे जाति कहते है।''

भारत में जाति प्रथा का स्वरूप सदैव एक सा नहीं रहा है। जब से जाति प्रथा का अभ्युदय हुआ था, तब से लेकर अब तक जाति प्रथा के विविध रूप है। मध्यकाल में जाति प्रथा का बन्धन कठोर था। ब्रिटिश काल में जाति प्रथा में रूढ़िवादी नियम कमजोर पड़ने लगे थे, किन्तु ब्रिटिश शासन साम्राज्य के हितों के संरक्षण हेतु जाति के विभाजन के पक्षधर थे। भारत की आजादी के बाद अनेक परिस्थितियों के कारण जाति प्रथा के ढाँचे एवं कार्यों में परिवर्तन हुआ है। इन परिवर्तनों में प्रमुख है– परम्परागत रूप में ब्राह्मणों की सर्वोच्च स्थिति में परिवर्तन, अर्न्तजातीय विवाहों का प्रचलन, खान–पान के प्रतिबन्धों में ढ़ीलापन, व्यवसायिक गतिशीलता, अस्पृश्यता जातियों को राजनीतिक रूप से समान अधिकार। जाति प्रथा के इस परिवर्तन के मूल में कुछ प्रमुख कारण है जैसे– औद्योगिकरण तथा नगरीकरण की प्रक्रिया में वृद्धि, पाश्चात्य शिक्षा एवं सामाजिक सुधार आन्दोलन का प्रभाव, राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान रूढ़िवादिता पर प्रहार, स्त्रियों की शिक्षा, संचार के साधनो में वृद्धि से गतिशीलता का बढ़ता दायरा। इसी के साथ जातिवाद को समाप्त करने के लिए स्वतंत्रता के पश्चात संविधानिक तथा राजकीय निर्णयों से प्रयास किया गया। भारतीय संविधान के भाग 3 के मूल अधिकारों से संबंधित अनुच्छेद 17 में स्पष्ट रूप से अस्पृश्यता को समाप्त कर दिया गया। 1954 मे विशेष विवाह अधिनियम पररित करना, 1955 में अस्पृश्यता अपराध अधिनियम तथा 1955 में हिन्दू विवाह अधिनियम पारित करने बाद भी जाति प्रथा एवं राजनीति के मध्य अन्तःक्रिया का सृदृढ़ रूप परिलक्षित होता है। व्यस्क मताधिकार लागू करने के पश्चात जाति एक राजनीतिक शक्ति के रूप में उदित हुई है क्योंकि इसे जाति एक वोट बैंक के रूप में सशक्त गुटों के रूप में उभरी। लोकतंत्र में सत्ता को प्राप्त करने के लिए इन वोटों का महत्व था। प्रो. रूडोल्फ के शब्दों

* सहायक आचार्य (गेस्ट फेकल्टी), राजनीति विज्ञान विभाग, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर, राजस्थान।

में– ''भारत के राजनीतिक लोकतंत्र के संबंध में जाति धुरी है, जिसके माध्यम से नवीन मूल्यों एवं तरीकों की खोज की जा रही है। यथार्थ में यह एक ऐसा माध्यम बन गई है, जिसके जरिए भारतीय जनता को लोकतांत्रिक राजनीतिक प्रक्रिया से जोड़ा जा सकता है।[2]

जाति एवं राजनीति में अन्तःक्रिया

रजनी कोठारी का दृष्टिकोण– प्रो. रजनी कोठारी ने अपनी पुस्तक 'कास्ट इन इण्डियन पॉलिटिक्स' ब्ेंज पद प्दकपंद च्वसपजपबे में भारतीय राजनीति में जाति की भूमिका का विस्तृत विश्लेषण किया जिसमें जाति के राजनीतिकरण के विविध चरणों को स्पष्ट किया है। उनके अनुसार ––जाति एवं राजनीति अन्तर्विरोधी नहीं है। भारत की जनता जातियों के आधार पर ही संगठित है। अतः राजनीति को जाति–संस्था का उपयोग करना ही होता है। जाति अपने दायरे में रखकर राजनीति उसे अपने काम में लाने का प्रयत्न करती है। दूसरी ओर राजनीति द्वारा जाति या बिरादरी को देश की व्यवस्था में भाग लेने का मौका मिलता है।''[3] जाति व्यवस्था और राजनीति मे अन्तःक्रिया के सन्दर्भ में प्रो. रजनी कोठारी ने जाति प्रथा के तीन रूप प्रस्तुत किये हैं– (1) जाति व्यवस्था का लौकिक रूप (2) जाति व्यवस्था एकीकरण का रूप (3) जाति व्यवस्था चैतन्य रूप।

जाति व्यवस्था का लौकिक रूप जाति के अन्दर विवाह, छुआछूत और रीति रिवाजों के द्वारा जाति की पृथक इकाई को कायम रखने का प्रयत्न। जातियों में प्रतिद्वंद्विता एवं गुटबाजी रहती है। प्रत्येक जाति प्रतिष्ठा की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील रहती है। जाति व्यवस्था एकीकरण रूप में जाति का दूसरा रूप एकीकरण का है। व्यक्ति को समाज में बाँधने का है। जाति व्यवस्था का चैतन्य रूप में जाति का तीसरा रूप चेतना बोध है। कुछ जातियां अपने को उच्च समझती है और समाज में उनकी प्रतिष्ठा होती है। इस कारण निम्न समझी जाने वाली जातियां भी अपने को उनके साथ जोड़ने की चेष्टा करती है।

भारतीय राजनीति में जाति की उभरती विशेषताएं निम्न प्रकार है–

- जाति व्यक्ति बांधने वाली कड़ी हैं। जातीय संघों और जातीय पंचायतों ने जातिगत राजनीतिक महत्वकांक्षाओं को बढ़ाया है।
- शिक्षा, शहरीकरण, औद्योगीकरण और आधुनिकरण से जातियां समाप्त नहीं हुई, अपितु उनमें एकीकरण की प्रवृत्ति को बल मिला और उनको राजनीतिक भूमिका मिली।
- राजनीति में प्रधान जाति की भूमिका का विश्लेषण किया जा सकता है। प्रधान जाति न केवल राजनीतिक और आर्थिक दृष्टि से ही शक्तिशाली होती है, बल्कि संख्या में ज्यादा होती है।
- उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ही जातिगत समुदायों का झुकाव राजनीति की ओर हो गया था जबकि ब्रिटिश शासन को भारत में एक मजबूत प्रशासनिक व्यवस्था की नींव डली थी। जातीय जनगणना ने जातीय समुदायों ने अपनी जाति के हितों के संरक्षण के लिए जातीय संघों ने प्रस्ताव पारित किए और शासन को अपनी मांगों के लिए प्रभावित करना प्रारम्भ किया। यहां तक कि कुछ जातियों ने शैक्षणिक सुविधा, शिक्षण संस्थाओं में जातिगत आरक्षण और सरकारी नौकरियों में आरक्षण की मांग की। जैसे आर्थिक रूप से पिछड़े सवर्ण जाति के लोगों ने भी आरक्षण की मांग की।
- चुनावों के दिनों में जातिगत समुदाय प्रस्ताव परित करके राजनीतिक नेताओं और दलों को अपने जातिगत समर्थन की घोषणा करके अपने हितों को मुखरित करते है।
- जाति की भूमिका स्थानीय और राज्य राजनीति पर अपनी भूमिका अदा करते है।
- जाति और राजनीति के संबंध स्थायी न होकर गतिशील है।

भारतीय राजनीति में 'जाति' की महत्वपूर्ण भूमिका

प्रो. वी.के.एन.मेनन का यह निष्कर्ष सही है कि ''स्वतंत्रता के बाद भारत के राजनीतिक क्षेत्र में जाति का प्रभाव पहले की अपेक्षा बढ़ा है।''[4] जयप्रकाश नारायण ने कहा था कि ''जाति भारत में अत्यधिक महत्वपूर्ण

दल है।'' जाति के लिए राजनीति का महत्व और राजनीति के लिए जाति का महत्व पहले की तुलना में बढ़ गया है। जाति राजनीति का आधार होने के बजाय जाति उसको प्रभावित करने वाला एक तत्व बन गया है। इसका मुख्य कारण संविधान में वयस्क मताधिकार को स्वीकार करने के पश्चात जाति एक राजनीतिक शक्ति के रूप में उभर कर सामने आई है। लोकतांत्रिक राजनीति के अन्तर्गत राजनीति, जाति के संगठन के माध्यम से अपना आधार दृढ़ करती है। आज भारतीय राजनीति के गलियारों से जाति–जाति की आवाज गुंजने लगी है। नेता अपनी राजनीतिक रोटियां सेंकने के लिए जातियों को राजनीतिक, आर्थिक, प्रशासनिक लाभ के लिए उकसा रही है। सभी राजनीतिक दल चाहे सिद्धान्तः जातिवाद की निंदा करते हो परन्तु जातीय एकता के माध्यम से सत्ता प्राप्त करने का भरसक प्रयत्न करते हैं। चुनाव में सभी राजनीतिक दल जातीय सर्वेक्षण करने के बाद ही अपनी पार्टी में टिकट देते हैं। वर्तमान मं जाति केन्द्र सरकार हो या राज्य सरकार चाहे स्थानीय प्रशासन सभी में जाति का प्रभाव देखने को मिलता है। जाति सरकार के निर्णय प्रक्रिया को प्रभावित करती है। इसका उदाहरण अनुसूचित जातियों लिए आरक्षण बढ़ाते रहने एवं अन्य पिछड़े वर्ग के लिए आरक्षण का क्रियान्वयन करना। वर्तमान में भारतीय राजनीति में जाति प्रधान राजनीतिक दलों का विकास हुआ है जैसे– बहुजन समाज पार्टी, लोकदल पार्टी एवं समाजवादी पार्टी आदि। जाति के आधार पर चुनाव क्षेत्र में पार्टियां उसी जाति के उम्मीदवारों का चुनाव करती है जिस जाति की संख्या में अधिकता है। भारतीय राजनीति में राजनीतिक दलों द्वारा जातिगत आरक्षण का प्रलोभन देकर उनके हितों को पूरा करने की होड़ लगी है। जाति का प्रभाव इतना बढ़ गया है कि मंत्रिमण्डल के निर्माण में जातिगत प्रतिनिधित्व को ध्यान में रखा जाता है जैसे– ब्राह्मण, जाट, राजपूत, कायस्थ, दलित व पिछड़े वर्गों को शामिल किया जाता है। सरकार के निर्णय प्रक्रिया में जातीय दबाव समूह की भूमिका अपने हितों के अनुसार निर्णय करने तथा प्रतिकूल होने वाले निर्णय को रोकने हेतु सक्रिय होते है। भारत में प्रतिनिधि संस्थाओं के अलावा प्रशासन में भी जातिगत आरक्षण की व्यवस्था की गई है। चुनाव प्रचार में प्रत्येक राजनीतिक दल एवं उम्मीदवार चुनाव प्रचार में खुल कर जाति का समर्थन मांगते है। जो लोग जातीय संगठन में उच्च पदों पर पहुंच गए है वे खुलकर चाहे जातिवाद का सहारा ना ले पर अपनी जातियों हितों की प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से पैरवी करते रहते हैं। जाति एक ऐसा संगठन है जिसको लोकतंत्र में राजनीतिक दलों ने सत्ता प्राप्ति के लिए एक सम्मोहित बाण के रूप में खेल–खेला है।

भारतीय राजनीति में जाति की भूमिका निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत समझी जा सकती है–

- **राजनीतिक दलों मे जातिगत आधार पर निर्णय–** भारत में सभी राजनीतिक दल किसी भी चुनाव क्षेत्र में प्रत्याशी के चयन में जातिगत गणित का आवश्यक विश्लेषण करते है। प्रत्येक राजनीतिक दल अपने द्वारा प्रत्याशियों के चयन, चुनावी घोषणा पत्र के निर्धारण तथा चुनाव जीतने की रणनीति के निर्धारण में जातिगत तत्वों को प्रमुखता दी जाती है। जातिगत ध्रुवीकरण करके अपना वोट बैंक सुरक्षित करना प्रत्येक राजनीतिक दल का प्रमुख कार्य हो गया है।
- **जातिगत आधार पर मतदान व्यवहार–** प्रायः चुनाव अभियान में जातिवाद को एक साधन के रूप में अपनाया जाता है ताकि पार्टी अपने प्रत्याशी की जीत हासिल हो सके। निर्वाचन क्षेत्र में जातिवाद की भावना को प्रयः इस कदर उकसाया जाता है ताकि सम्पूर्ण जाति एक हो जाय और उस प्रत्याशी को जाति विशेष के संपूर्ण वोट एकजुटता के साथ समर्थन प्राप्त करने में सफल हो सके। भारत की राजनीति विशेषकर राज्यों की राजनीति में जातिगत समीकरण मतदान व्यवहार को स्पष्ट रूप से प्रभावित करते हैं। जैसे– बहुजन समाज पार्टी आधार अनुसूचित जाति है। समाजवादी पार्टी का आधार पिछड़े वर्ग के लोग है। वर्तमान मे तो राष्ट्रीय पार्टियां भी इससे अछूती नहीं है।1990–91 से मण्डल आयोग के 27ः आरक्षण के निर्माण के बाद से राजनेताओं द्वारा समाज को दो भागों में बाँटा जा रहा है। राजनीतिक पार्टियां पिछड़े बनाम अगड़े के रूप में समाज को अलग–अलग गुटों में बाँट रही है। राज्यों की राजनीति हो या राष्ट्रीय (विधानसभा या लोकसभा) राजनीति चुनावों में जाति व धर्म का सहारा लेकर वोटों का ध्रुवीकरण करके राजनेताओं को जातिगत सफलता मिली है।

- **जातिगत दबाव समूह–** भारतीय राजनीति में जातीय संगठन और समुदायों का दबदबा है। जातीय संगठन राजनीतिक महत्व के दबाव समूह के रूप में प्रवृत्त हुए हैं। जोहरी के अनुसार जातिगत दबाव समूह अपने निहित स्वार्थों एवं हितों की पूर्ति के लिए नीति–निर्माताओं को प्रभावित करते हैं। अनेक जातीय संगठन और समुदाय जैसे– तमिलनाडु में नाडार जाति संघ, बिहार में कायस्थ, राजस्थान में गुर्जर संगठन, राजपूत सभा और जाट सभा, गुजरात में क्षत्रिय महासभा, बिहार में यादव सभा आदि अपने–अपने संगठित बल के आधार पर राजनीतिक सौदाबाजी भी करते हैं। ये संगठन राजनीति को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं।
- **निर्णय प्रक्रिया में जाति की महत्वपूर्ण भूमिका–** भारत में जातियां संगठित होकर राजनीतिक और प्रशासनिक निर्णय प्रक्रिया को प्रभावित करती है। जैसे– अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति आरक्षण के प्रावधान को निरन्तर आगे बढ़ाने के लिए जोर देती रहती है जबकि अन्य जातियां आर्थिक आधार पर आरक्षण के लिए जोर देती रहती है। आजकल आरक्षण के मुद्दे को जाति मुद्दा बना कर राजनीतिक दल जाति को एक ध्रुव में बांधकर फायदा की ताक में रहती है। जो देश हित में नहीं है।
- **मंत्रिमण्डलों के निर्माण में जातिगत प्रतिनिधित्व–** जाति का प्रभाव इतना अधिक है कि आज केन्द्रीय मंत्रिमण्डल से लेकर राज्यों और ग्राम पंचायतों तक में प्रत्येक प्रधान जाति को प्रतिनिधित्व देना अनिवार्य हो गया है। केन्द्रीय मंत्रिमण्डल में भी अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों, पिछड़ी जातियों, सिक्खों, मुसलमानों, ब्राह्मणों, जाटों और राजपूतों को किसी न किसी रूप में स्थान अवश्य दिया जाता है।
- **भारत में जाति एवं प्रशासन भी एक दूसरे को प्रभावित करते हैं।** लोकसभा और विधानसभाओं के लिए जातिगत आरक्षण की व्यवस्था प्रचलित है। केन्द्र एवं राज्यों की सरकारी नौकरियों एवं पदोन्नतियों के लिए जातिगत आरक्षण का प्रावधान है। पिछड़े वर्गों को भी 27: आरक्षण लागू है। सरकार में सत्ता प्राप्त दल निर्वाचन में अपने प्रत्याशियों के हितों में जाति आधार पर अधिकारियों के स्थानान्तरण करने की व्यवस्था करता है।
- **जातिवाद से आच्छादित राजनीति–** प्रो. एम.एन.श्रीनिवास ने लिखा है– ''शिक्षित भारतीयों में सुविस्तृत धारणा है कि जाति अपनी अन्तिम सांस ले रही है और नगरों में रहने वाले पश्चिमी शिक्षा प्राप्त उच्च वर्गों के सदस्य इसके बन्धन से मुक्त है, परन्तु ये दोनों धारणाएं गलत है। ये लोग भोजन संबंधी प्रतिबंधों का चाहे अनुसरण न करते हो, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि वे जाति के बंधनों से पूर्ण मुक्त है। आश्चर्यजनक सन्दर्भों में वे अपने जातीय व्यवहारों को प्रदर्शित करते है।''
- **जाति की सकारात्मक भूमिका–** सामान्यता भारतीय राजनीति में जाति के प्रभाव की तीव्र आलोचना भी की जाती रही है और इसे राष्ट्रीयता के लिए घातक समझा जाता रहा है। राट्रीय एकता व अखण्डता की चुनौति भी हो सकती है जो देश के घातक है। लेकिन इसका एक अन्य पक्ष भी देखने को मिलता है। एक ओर तो जाति ने समाज के टुकड़ों में विभक्त करने वाले तत्व की भूमिका अदा की है तो दूसरी ओर इसने संयुक्त करने वाले तत्व की भी भूमिका अदा की है। भारतीय समाज में जाति प्रभाव पूर्ण सम्पर्क–सूत्र का कार्य और नेतृत्व और संगठन को आधार प्रदान करती है। यह उन व्यक्तियों को भी लोकतांत्रिक प्रक्रिया में भाग लेने की क्षमता प्रदान करती है जो निम्न जातियों के कहे जाते हैं। रजनी कोठारी के शब्दों में, ''कुल मिलाकर जाति और जातीय संगठनों ने भारतीय राजनीति में वही भूमिका निभाई है, जो पश्चिमी देशों में विभिन्न हितों व वर्गों के संगठनों ने।''
- **भारतीय राज्यों में जातिगत तत्व–** माइकेल ब्रेचर के अनुसार अखिल भारतीय राजनीति की अपेक्षा राज्य स्तर की राजनीति पर जातिवाद का प्रभाव अधिक है।[5] राज्यों की राजनीति में जाति का निर्णायक प्रभाव अधिक है। उदाहरण के लिए, बिहार की राजनीति में राजपूत, ब्राह्मण, कायस्थ और जनजाति प्रमुख प्रतिस्पर्द्धी जातियां है। राजस्थान में राजपूतों और जाटों में, हरियाणा में अहीर, जाट, राजपूत,

ब्राह्मा और दलित वर्ग, गुजरात में पाटीदार और अनाविल, महाराष्ट्र में ब्राह्मण, मराठा और महार, केरल में ईसाई और मुसलमान सक्रिय है और आन्ध्रप्रदेश में काम्मा और रेड्डी जातियों का संघर्ष प्रभावी रहा। वामपंथी और साम्यवादी दल भी जाति के आधार पर की जाने वाली अपील से मुक्त नहीं है। भारतीय संघ के लगभग सभी राज्यों में जातिगत तत्वों का प्रभाव है।

सारांश (निष्कर्ष)

संविधान द्वारा यद्यपि जाति निरपेक्ष राजनीतिक व्यवस्था स्थापित की गई थी, परन्तु फिर भी देश के राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक जीवन में जाति के प्रभाव से कोई क्षेत्र अछूता नहीं है। ब्रिटिश शासक साम्राज्य के हितों के संरक्षण हेतु जातियों के विभाजन का सहारा लिया एवं वे विभाजन के पक्षधर थे। स्वतंत्रता के बाद भारतीय संधिधान के भाग 3 के मूल अधिकारों से संबंधित अनुच्छेद 17 में स्पष्ट रूप से अस्पृश्यता को समाप्त कर दिया गया परन्तु फिर भी ये सामाजिक भेद को नहीं मिटा पाये। जाति प्रथा किसी न रूप में विश्व के हर कोने में पाई जाती है, पर एक गम्भीर सामाजिक कुरीति के रूप में यह हिन्दू समाज की ही विशेषता है कि यह पूर्ण रूप से सत्य नहीं है अपितु यह इस्लाम और ईसाई समाज भी इससे अछूते नहीं रह सके। प्रो. वी.के.मेनन ने सही कहा था कि ''आजादी के बाद से राजनीतिक क्षेत्र में जाति का प्रभाव बढ़ा है। राजनेता प्रशासन के अधिकारियों और विद्वानों ने स्वीकार किया है कि गिरावट के मुकाबले जाति का प्रभाव दिन–प्रतिदिन बढ़ रहा है।'' निर्णय प्रक्रिया में जाति की भूमिका बढ़ती जा रही है। अनुसूचित और अनुसूचित जनजातियों को संगठित होकर सरकार व प्रशासन पर आरक्षण को अधिक वर्षों के लिए बढ़ाने का दबाव बनाती है और कुछ हद तक सफल भी हो रही है। प्रत्येक राजनीतिक दल चाहे राष्ट्रीय दल हो या क्षेत्रीय दल सभी दल चुनावों में अपने प्रत्याशियों का चयन जातीय समीकरण के आधार पर मनोनीत करते हैं। जातिगत आधार पर मतदान करते ताकि हितों को साध सकें। लोगों को उकसाने के लिए जातीय नारे लगाये जाते हैं। जैसे–'जाट बेटी जाट को जाट का वोट जाट को'। मंत्रिमण्डलों के निर्माण में जातियोंका पूरा ध्यान रखा जाता है। यहां तक कि संवैधानिक पदों के लिए भी जाति एवं सम्प्रदाय हावी रहता है। सभी जातियो के संगठन बने है जो अपने राजनीतिक सौदेबाजी भी करते हैं। यहां तक कि सरकार नौकरियां एवं पदोन्नति में आरक्षण की व्यवस्था की गई है। भारतीय संघ के लगभग सभी राज्यों में जातिगत तत्वों का प्रभाव है। भारतीय राजनीति में जाति की भूमिका का मूल्यांकन करना अत्यन्त कठिन कार्य है। कई लोग जाति को जाति का 'राजनीति का केन्सर' मानते हैं। जाति प्रथा को राष्ट्रीय एकता मार्ग मे बाधा माना जाता है क्योंकि इससे व्यक्तियों में पृथकतावाद की भावना जाग्रत होती है। जातिगत निष्ठाओं का सृजन कर यह प्रथा लोकतंत्र के विकास मार्ग को अवरूद्ध कर देती है। भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में जातियां शक्ति पुंज है, जिनके प्रभावों की उपेक्षा नहीं की जा सकती है। डॉ. आशीर्वादम ने लिखा कि–''भूतकाल में जाति के चाहे जो भी हो, आज प्रगति में बाधक है।'' बुराई, धर्म और जाति में नहीं है, बुराई तो धार्मिक कट्टरता और जातीय कट्टरता में है। राजनीति में इस जातिगत विद्वेष के लिए मूल रूप से दलीय राजनीति और चुनावी राजनीति ही दोषी है। वर्तमान में कई दशकों से राजनीतिक दल के पास आर्थिक विकास एवं राजनीतिक विकास का कोई मुद्दा नहीं है। राजनीतिक खेल धार्मिक भेदों तथा अगड़ों, पिछड़ों और दलितों को आपस में बाँटकर खेला जा रहा है।

राजनीतिक दल 'वोट राजनीति की प्रेरणा' से जातिगत विद्वेष का वातावरण बना रहे हैं। प्रत्येक राजनीतिक दल विकास की ओर उन्मुख राजनीति को अपनाए, चुनाव में जनता के सामने आर्थिक विकास के वैकल्पिक कार्यक्रम प्रस्तुत करे तभी राजनीति में जाति की भूमिका को मर्यादित किया जा सकेगा और इस भूमिका को रचनात्मक दिशा दी जा सकेगी। भारत में लोकतंत्र सफल होने के लिए, चुनाव में जातिवाद के आधार को मिटाना होगा। सभी राजनीतिक दलों को जाति एवं धर्म को अपना वोट बैंक न बनाएं। सरकार द्वारा जाति और वर्ग के आधार पर दी जाने वाली सभी सुविधाओं को तत्काल समाप्त कर दिया जाना चाहिए। विभिन्न जातियों द्वारा प्रकाशित समाचार पत्रों और पत्रिकाओं और उन पर प्रकाशित समाचारों और उन पर प्रतिबंध लगाया जाना चाहिए जो नस्लवाद को बढ़ावा देते हो। दूसरी और भारतीय समाज में जाति प्रभावदायक सम्पर्क

सूत्र तथा नेतृत्व और संगठन का आधार प्रदान करती है और उन व्यक्तियों को भी प्रजातांत्रिक प्रक्रिया में भाग लेने की क्षमता प्रदान करती है। इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि आगे आने वाले अनेक वर्षों तक राज्यों की राजनीति जातियों की राजनीति रहेगी।

अति पिछड़े और दलित एक छोटी संख्या वाली जातियां है और इनका ठिकाना गांव, शहर में जहाँ–तहाँ फैला हुआ है, और इनकी इस अवस्था के कारण लोकतांत्रिक राजनीति में या चुनावों में इनको कोई खास योगदान नहीं रहता। शिक्षा के अभाव के कारण भी इनमें कोई बड़ा राजनैतिक नेतृत्व विकसित नहीं हो पाता है। वर्तमान में धीरे–धीरे सरकारी योजनाओं के लाभ लेते हुए अब इनमें चेतना जाग्रत हो रही है, इनका रूझान अब शिक्षा व विकास की ओर अग्रसर हो रहा है। समय के साथ अब पिछड़ी जातियों को विधानसभा चुनाव में टिकट भी दिया जा रहा है। फिर भी जातिगत भेदभाव जैसे भयानक बीमारियों से जकड़ा हुआ है। इसका निदान खोज पाना कठिन मालुम पड़ता है। जात–पात बहुल हमारे इस समाज से यह अपेक्षा कैसे की जा सकती है कि समाज में व्याप्त यह भयंकर बीमारी अचानक से चमत्कारिक ढंग से ठीक हो जाय। इस सच्चाई को कोई कितना भी नकारे लेकिन आज भी भारतीय जनतंत्र की राजनीति के केन्द्र में नागरिक न होकर जाति ही है।

संक्षेप में, चाहे जाति आधुनिकीकरण के मार्ग में बाधक न हो तथापि राजनीति में जाति का हस्तक्षेप लोकतंत्र की धारणा के विपरीत है। जातिवाद देश, समाज और राजनीति के लिए बाधक है। विविधता की सीमाएं होती है। देश में इतनी जातियां, उपजातियां तथा सहजातियां पैदा हो गयी है कि वे एक–दूसरे से पृथक रहने में ही अपने–अपने अस्तित्व की रक्षा समझती है। पृथकतावादी की दृष्टि से राष्ट्रीय एकता के लिए अत्यधिक घातक है।

जातिवाद प्रजातंत्र के लिएघातक है। इससे औद्योगिक कुशलता में बाधा पहुंची है। नैतिक पतन भी होता है। राष्ट्रीय विकास में बाधा पहुंचती है। देश की गतिशीलता में बाधक तत्व है। सामाजिक तनाव में वृद्धि होती है। जातिवाद अनेक सामाजिक समस्याओं को जन्म देता है। राष्ट्रीय एकता के लिए भी खतरा है। इसके लिए जाति–प्रथा को समाप्त करना होगा। जाति शब्द का कम से प्रयोग हो। अन्तर्जातीय विवाह को बढ़ावा देना चाहिए एवं आर्थिक एवं सांस्कृतिक समानता के आधार पर ही वे एक–दूसरे के निकट आ सकते हैं। उचित शिक्षा, संठगनों पर रोक एवं नये प्रकार के सामाजिक व सांस्कृतिक संगठन बने जिसमें सभी जाति के लोगों की सदस्यता हो और अंत में कह सकते हैं कि प्रभावशाली व्यवहारिक कानून बनाने चाहिए ताकि जातिवाद को बढ़ावा नहीं मिले। सभी राजनीतिक दलों को जातीय संगठन संख्या बल के बजाय सभी पिछड़ों चाहे कोई भी जाति का हो राष्ट्र की मुख्य धारा (आर्थिक राजनीति) में लाने का प्रयास करना चाहिए। चुनावी मुख्य मुद्दा सिर्फ विकास का हो न कि जाति का तभी राष्ट्र को एक मजबूत एवं सशक्त बना सकते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1 भारतीय शासन एवं राजनीति– डॉ. एससी.सिंहल, पृ. 315

2 भारतीय शासन एवं राजनीति– डॉ. रूपा मंगलानी, पृ. 625

3 रजनी कोठारी, पॉलिटिक्स इन इण्डिया, 1970, पृ. 225

4 वी.के.मेनन, आर्टिकल 'Caste Politics and Leadership in India: Political Science Review, Oct, 1964

5 माइकेल ब्रेचर– Succession In India, P. 230

भारतीय संविधान और शासन की समझ– पुखराज जैन

भारतीय शासन एवं राजनीति– डॉ. बी.एल.फड़िया

❖◆❖